Volume-2, No. II, Aug-2015, pp. 100-103

भारत के सन्दर्भ में सामाजिक न्याय एवं न्याय की अवधारणा

डॉ० नरेन्द्र नागर पोस्ट डॉक्टरल फैलो,
आई०सी०एस०एस०आर०, नई दिल्ली भारत।
मधुलिका शोध छात्र,
शिक्षाशास्त्र विभाग, चौ० चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ उ.प्र. भारत।

सारांश

''अधिकार खो कर बैठ जाना यह महान दुष्कर्म है। न्यायार्थ अपने बंधु को भी सजा देना धर्म है।''

सामाजिक न्याय की अवधारणा एक विश्वव्यापी अवधारणा है। प्राचीन काल से आधुनिक काल तक न्याय के अनेक शब्द बदले हैं। सामाजिक न्याय अपने आप में एक अनुभूति है। सामाजिक न्याय का सकारात्मक अथवा निबेधात्मक प्रभाव विशेषकर निर्धन, अपेक्षित, पीड़ित दलित, असहाय विकलांग एवं कमजोर वर्ग पर पड़ता है। प्रत्येक युग में न्याय को सदगुण का प्रतीक तथा अन्याय को अवगुण का प्रतीक माना जाता है। प्रत्येक समय चाहे वो प्राचीन कालीन व्यवस्था हो या आधुनिक अन्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था को दूषित माना जाता है। प्राचीन काल में कोई भी लिखा हुआ संविधान नहीं था। लेकिन अपराध फिर भी बहुत कम थे और सभी व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों का पालन करते थे। हमारे ग्रन्थ तथा हमारे महाकाव्य ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अर्थवेद रामायण, महाभारत, गीता इन सभी में धार्मिक एवं नैतिक उपदेशों के राजा एवं प्रजा के कर्त्तव्यों को सुनिश्चित किया गया तथा उन्हीं उद्देश्यों के द्वारा सामाजिक न्याय की स्थापना की गयी।

मुख्य शब्दः सामाजिक न्याय, मानवता, ब्रहामण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, दार्शनिक, सैनिक, मजदूर, जौहर प्रथा

न्याय का विचार गम्भीर नैतिक भावनाओं के साथ प्रारम्भ हुआ। एक न्याय संगत सामाजिक व्यवस्था प्रत्येक युग में सद्गुण का प्रतीक माना गय। न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था की उत्पत्ति तथा इसकी अभिव्यक्ति दार्शनिक, नैतिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा अन्य संवैधानिक साधनों के द्वारा समय–समय पर की गयी। सामाजिक न्याय की भूमिका प्रत्येक समाज तथा प्रत्येक देश को प्रगति की तरफ ले जाने वाली है। जिस समाज में न्याय नहीं होता वहां मतस्य वाली स्थिति पैदा होती है। अर्थात् बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है। तो ऐसे समाज का अस्तित्व बहुत जल्दी समाप्त हो जाता है। सामाजिक न्याय हमारी अन्तरात्मा की पुकार है, जो मानवता से प्रेरित है। प्राचीन कालीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था में भारतीय समाज को चार वगों में बाटा गया, जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं सूद्र इन चारों वर्गों में भारतीय समाज को बाटा गया, जिसमें ब्राह्मण को शास्त्रों का ज्ञाता तथा ज्ञान का पुजारी माना गया। यदि ब्राह्मण कोई अपराध कर देता था तो उसे कठोर सजा का प्रावधान था। क्योंकि वह सभी नियमों का ज्ञाता था और क्षत्रिय को समाज का रक्षक माना जाता था। प्रत्येक अवस्था में उसे अपने कर्त्तव्यों को तथा समाज की रक्षा का भार सौंपा गया। वैश्य को व्यापार का स्रोत माना गया तथा लेन–देन का सम्पूर्ण भार उसे सौंपा गया। सूद्र को सेवा का भार दिया गया तथा उसे समाज में प्रत्येक वर्गों की सेवा का भार दिया गया। उसकी तुलना पैर से की गयी, ताकि यदि पैर मजबूत होंगे तो व्यक्ति का भार संभाला जा सकता है। लेकिन इस व्यवस्था में समय के साथ दोष उत्पन्न होते चले गये और समाज निष्क्रिय, रूढ़िवादी होकर अंदर से टूटने लगा है। सरकार दमनकारी अप्रजातांत्रिक, अनुदार बन जाती है और अन्य संस्थाएं संकीर्ण संकुचित हो जाती हैं। यह कल्याणकारी राज्य की संस्वीकृति है, जिसमें राज्य की समस्त संस्थाओं से सामाजिक न्याय प्रकट हो, प्राचीन युनान में भी प्लेटों ने सामाजिक न्याय व्यवस्था मानव प्रकृति के अनुरूप तीन वर्गों में विभक्त कर व्यक्तिगत और सामाजिक स्तर पर बतायी है। इसके भी कार्य विभाजन को मुख्य आधार माना है। प्लेटों ने अपने समाज का वर्गीकरण तीन आधारों पर किया है। दार्शनिक, सैनिक व मजदूर वर्ग, दार्शनिक वर्ग का प्रधानगुण विवेक है तथा सैनिक वर्ग का प्रधान गुण साहस व मजदूर वर्ग का प्रधान गुण क्षुद्धा अर्थात् भूख है। दार्शनिक वर्ग व सैनिक वर्ग जिसके पास अपनी सम्पत्ति व अपना परिवार नहीं होगा, क्योंकि ये वर्ग समाज की रीड़ हैं। यदि इन वर्गों के पास अपना परिवार व सम्पत्ति होगी तो ये समाज में भ्रष्टाचार को जन्म देंगे तथा समाज में अनैतिकता की स्थिति पैदा होंगी। इसीलिए पूरे समाज की सम्पत्ति इनकी सम्पत्ति तथा पूरा राज्य इनका परिवार होगा तथा ये राज्य सेवा के लिए कार्य करेंगे। राज्य के लिए संविधान बनायेंगे, नीतिया बनायेंगे तथा समाज को उन्नति की तरफ ले जायेंगे। सिर्फ मजदूर वर्ग के पास अपना परिवार होगा। अतः प्लेटो ने दार्शनिक वर्ग का मुख्य गुण विवेक माना है, जिसमें उसने उनकी शिक्षा की भी व्यवस्था की है तथा सैनिक वर्ग का मुख्य गुण साहस तथा मजदूर वर्ग

का मुख्य गुण भूख तथा प्लेटो ने जो दास वर्ग का कर्त्तव्य बताया है। अपने मालिक की सेवा करना तथा उसके लिए कार्य करना सामाजिक न्याय बताय है। अर्थात् सभी वर्ग अपने–अपने कर्त्तव्यों का पालन करेंगे यही उसका सामाजिक न्याय है। अरस्तु ने मध्यम वर्ग के शासन में सामाजिक न्याय को देखा और बताया कि जीवन और राज्य व्यवस्था को न्यायसंगत बनाने के लिए सभी प्रकार के अतिवाद की उपेक्षा करनी चाहिये।

अरस्तु ने न्याय को दो भागों में बांटा– सामान्य और विशिष्ट। सामाजिक न्याय का आधार उसका सामान्य न्याय है, जिसमें नैतिक गुण, सार्वजनिक भलाई सद्गुण हैं और कानून की सर्वोच्यता है।

विश्व के अन्य ईश्वरवादी धर्म जैसे, 'क्रिश्चएनिटी', 'इस्लाम' ने सामाजिक न्याय धारणा को अपने ग्रन्थों के अनुसार माना, सामाजिक न्याय के दो महत्वपूर्ण पक्ष हैं। विकास और वितरण पुंजीवाद में विकास तथा समाजवाद में वितरण पर बहुत ज्यादा बल दिया जाता है। समाजवाद में सबको अपनी योग्यता के अनुसार पारितोषिक मिलना चाहिये।

प्राचीन काल में यूनान में शक्तिशाली का हित ही न्याय था। लेकिन उसकी परिभाषा बदलती चली गयी। रोमन दार्शनिक सिसरो के अनुसार, ''न्याय एक आतिरिक शुभ है'' पाइथागोरस ने न्याय को सद्गुण और सामांजस्य पर आधारित माना है, लेकिन सोफिस्ट विचारकों ने न्याय को ''व्यक्ति सापेक्ष'' माना है, प्रोटेगोरस ने न्याय को वस्तुओं का मापदण्ड माना है। प्रोडिकस ने कहा कोई वस्तु इसीलिए मुल्यवान हो जाती है क्योंकि उसका उपयोग होता है, नहीं तो किसी भी वस्तु का कोई उपयोग नहीं है। थ्रेसीमेकस ने न्याय शक्तिशाली का हित है। प्लेटो ने न्याय आत्मा का सद्गुण है। यह शुभ और अति आवश्यक है। अरस्तु ने न्याय को विधिपरकता और निष्पक्षता के साथ जोड़ा है, न्याय परम्परागत रूप से एक ऐसा विचार है जो समाज में सन्तुलन बनाये रखता है। आधुनिक विचारकों में डॉ० अम्बेडकर ने बताया, ''न्याय सामान्यतः स्वतंत्रता समानता का भ्रातृत्व का दूसरा नाम है।'' डेविड ह्यूम ने न्याय प्राकृतिक सद्गुण नहीं बल्कि मानव निर्मित और कृत्रिम है। क्योंकि न्याय की उत्पत्ति मानव में अपनी आवश्यकताओं और समाज में सन्तुलन बनाये रखने के उद्देश्य से की है। न्याय पर मार्क्स ऐजिल लेनिन आदि सभी ने अपने विचारों को दिया जिसमें समाज में किसी भी प्रकार का शोषण, उत्पीड़न न हों तथा वर्ग भेद के बिना एक अच्छे समाज की स्थापना हो सके। लास्की ने इंग्लैण्ड में न्याय में स्वतन्त्रता, समानता तथा मानव गरिमा को शामिल किया है। हमारे मौलिक अधिकारों में न्याय को शामिल किया है। संविधान के अनुच्छेद– 14, 15, 16, 17, 18 में सामाजिक समानता पर बल दिया गया, जिसमें कानून सभी के लिए बराबर होगा तथा राज्य किसी भी व्यक्ति के साथ भेदभाव नहीं करेगा तथा इस प्रकार की उपाधि प्रदान नहीं करेगा जिससे समाज के शोषण की भावना को बढ़ावा मिले। संविधान के अनुच्छेद– 19 (A B C D E F) में सामाजिक स्वतन्त्रता राजनैतिक स्वतन्त्रताओं का विवरण है। सभी व्यक्तियों को भारत का नागरिक होने के साथ उन्हें स्वतन्त्रता का अधिकार दिया गया है। जिससे वे अपना विकास कर सकें तथा बिना भय के अपना जीवन व्यतीत कर सकें। संविधान के अनुच्छेद–21 में प्राण एवं दैहिक स्वतन्त्रता का वर्णन किया गया है। इसमें मानव गरिमा का भी ध्यान रखा गया है। किसी के मान–सम्मान को किसी भी प्रकार से कोई हानि न पहुंचे, इसीलिए इसमें सामाजिक समानता पर बल दिया गया है।

इसमें किसी प्राणी को उसके प्राणों से तभी वंचित किया जा सकता है, जब उसने कोई जधन्य अपराध किया हो तथा इसकी अपनी एक न्यायिक प्रक्रिया होगी। इसमें व्यक्ति को मान सम्मान से जीने, किसी को हानि न पहुंचाने आदि का प्रावधान है। हम किसी को असभ्य भाषा में बात नहीं कर सकते हैं। यदि किसी को बन्दी बनाना है तो उसे उसका कारण बताया जायेगा, हम किसी भी व्यक्ति के एकान्त वास में खनन नहीं डाल सकते हैं। किसी भी व्यक्ति का फोन टेप नहीं कर सकते हैं। किसी को इस प्रकार के एस०एम०एस० नहीं कर सकते हैं जो उसके मान–सम्मान को हानि पहुंचाये। इसमें उन सभी बच्चों को जो 7 से 14 वर्ष तक के हैं। उन्हें निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है तथा अभिभावकों का कर्त्तव्य बनता है कि वो उन्हें स्कूल भेंजे। संविधान का अनुच्छेद–21 पूर्ण तथा सामाजिक न्याय पर बल देता है। अनुच्छेद– 23, 24 में बाल समानता पर बल दिया गया है। अनुच्छेद– 25, 26, 27, 28 में धार्मिक स्वतन्त्रता पर बल दिया गया है। अनुच्छेद– 39 में निःशुल्क न्याय की स्थापना पर बल दिया गया है। इस प्रकार हमारे मौलिक अधिकार और नीति–निर्देशन तत्वों के माध्यम से सामाजिक समानता पर बल दिया है। संविधान के अनुच्छेद–45 में सभी बच्चों को शिक्षा का प्रावधान तथा अनुच्छेद–46 में कमजोर और दुर्बल वर्गों को विशेष सहायता देना, ताकि वो अपना सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक विकास कर सके तथा समाज को एक नई दशा और दिशा प्रदान कर सके। इस प्रकार सामाजिक समानता सामाजिक न्याय की स्थापना पर बल देता है।

भारत के सन्दर्भ में सामाजिक न्याय की अवधारणाः–

भारत में प्राचीन काल से ही न्याय व्यवस्था मजबूत स्थिति में रही, हमारे वेद ग्रन्थ पुराण सभी में न्याय की बहुत व्यापक व्याख्या की गयी, इसीलिए भारतीय सभ्यता ने हमेशा अपनी गरिमा को बनाये रखा है। प्राचीन काल में राजा को भी न्याय का रक्षक माना गया है, क्योंकि

वह पृथ्वी पर भगवान का प्रतिनिधि है। हमारे धार्मिक ग्रन्थों से उसे वो नैतिक शिक्षा मिलती है, जिससे वह अपनी प्रजा के मध्य में अपना गौरवपूर्ण स्थान ग्रहण कर सकें। जिस प्रकार अंगों के बिना शरीर की कल्पना नहीं की जा सकती उसी प्रकार न्याय के बिना राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती। जिस प्रकार एक नाविक के बिना नाव नहीं चल सकती उसी प्रकार न्याय के बिना समाज नहीं चल सकता। प्राचीन काल में सामाजिक न्याय ही अवधारणा समाज में जाति एवं वर्ण को आधार बनाकर की गयी। प्राचीन भारत में बौद्धिक धारणा के अनुसार सामाजिक न्याय को चातुर्वर्णीय व्यवस्था के साथ जोड़ा गया। इसमें न्याय का आधार कर्मन बनाकर अन्य को बनाया गया तथा प्रत्येक वर्ण के अपने–अपने उद्देश्य एवं कर्त्तव्यों का निर्धारण किया गया। सांख्या दर्शन में भी मनुष्य को सत्व रण के गुणों से परिपूर्ण माना गया। इस तरह सामाजिक न्याय में कार्य विभाजन कर्त्तव्य विभाजन और समाज में सामांजस्य की स्थिति को पैदा किया गया।

भगवदगीता में भी न्याय की परिकल्पना की गयी है। प्रत्येक व्यक्ति को कर्म पर बल दिया गया है। हमारा कर्त्तव्य है कर्म करना फल की इच्छा नहीं। हमें बिना फल की इच्छा किये अपने कर्म अर्थात् कार्यों को करना चाहिये।

प्राचीन कालीन की वर्ण व्यवस्था पर आधारित न्याय से असहमत होते हुए चार्वाक जैन बौद्ध में सामाजिक न्याय की संकल्पना को अपने अर्थ में बताया गया। बौद्ध व जैन में समाज को बांधने के लिए नियमों का प्रतिपादन किया गया। इन सभी में व्यक्तियों को उनके अधिकारों और कर्त्तव्यों का ज्ञान कराया गया है। बौद्ध दर्शन में अहिंसा को सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया गया है। अहिंसा के द्वारा हम किसी भी समाज और व्यक्तियों को उनके नैतिक सामाजिक दर्शन का ज्ञान करा सकते हैं।

मध्यकाल में जातिवाद सामन्तवाद आर्थिक शोषण बेगार गुलाम प्रथा तथा अनेक प्रकार के कर इन सभी ने समाज को कमजोर बना दिया। प्रर्दा प्रथा, बाल विवाह जैसी कुरीतियों ने भी इस मुश्किल काल में ही समाज में जगह बना ली। इस काल में सामाजिक न्याय की संकल्पना तार–तार हो गयी तथा महिला एवं पुरूष दोनों की गरिमा को हानि होना शुरू हो गया। मध्यकाल में ऊँच–नीच, छुआछूत, भेदभाव, साम्प्रदायिक तनाव, अंधविश्वास, रूढ़िवादी कट्टरता, शिक्षा, चेतना–अधिकारों का अभाव, निर्धनता ने सामाजिक भावना को धूमिल कर दिया, लेकिन फिर भी कुछ साधु सन्तों, सूफीयों ने समाज में सामाजिक न्याय व्यवस्था को नया रूप देने का प्रयत्न किया। इन्होंने समाज से कुरीतियों को समाप्त करने पर बल दिया।

ब्रिटिश काल में सामाजिक न्याय को मूर्त रूप दिया गया। इसमें विधायिका कार्य तालिका न्याय तालिका की व्यवस्था की गयी तथा न्याय का एक स्पष्ट अर्थ निकाला गया। इस समय में राज्य एक शक्तिशाली अभिकरण के रूप में हमारे सामने आया तथा जो कुरीतियां या प्रथायें मुश्किल काल में पनप गयी थीं उन्हें दबाने के लिए मजबूत कानून बनाये गये तथा लिखित कानूनों का निर्माण किया गया। इस समय जैसे बाल–विवाह, सती–प्रथा जैसी प्रथाओं पर जिनसे समाज तथा व्यक्ति दोनों को हानि हो रही थी उन्हें दूर करने के लिए सख्त कानून बनाये गये। सती–प्रथा, जौहर–प्रथा जिसमें एक स्त्री के पति के मर जाने पर उसे उसकी चिंता में जिन्दा बैठा दिया जाता था। इसमें समाज की एक प्रतिभा को तो भगवान ने छिन लिया तथा दूसरी प्रतिभा को समाज के कठोर नियमों ने इसीलिए इस काल में सामाजिक न्याय में सती–प्रथा, जौहर–प्रथा, बाल–विवाह के खिलाफ सख्त कानून बनाये गये तथा समाज में फैली कुरीतियों को समाज से दूर करने का भरपूर्व प्रयास किया गया। ब्रिटिश काल में इस प्रकार के कानूनों का निर्माण किया गया जो गरीबी, अशिक्षा जैसी बीमारियों को समाज से दूर करने का भरपूर्व प्रयास किया गया। इस काल में निम्न जाति के लोगों को भी शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हुआ। उन्हें रोजगार प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हुआ। ब्रिटिश काल में ही भारत समाज में नवचेतना बौद्धिक जागरूकता राष्ट्रवाद आधुनिकतावाद सामाजिक मूल्यों ने समाज में जन्म लिये तथा भारतीय समाज को एक नयी दिशा प्रदान की। इसी काल में वैज्ञानिक युग तकनीकी युग का प्रारम्भ हुआ, संचार क्रान्ति, उद्यौगिक क्रान्ति इसी युग की देन हैं। ब्रिटिश काल में न्याय की संकल्पना बदली तथा सभी को सरल एवं शुलभ सामाजिक न्याय प्राप्ति पर बल दिया गया। 1947 में स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही ये संविधान के निर्माण ''न्याय–आर्थिक, राजनैतिक'' के लक्ष्य को सामने रखा गया। संविधान की प्रस्तावना सहित अनेक स्थानों पर ऐसे प्रावधान रखे गये जो सामाजिक न्याय की स्थापना में सहायक हो। समाज को जागरूकता प्रदान कर सकें। महिलाओं का सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षिक विकास कर सकें तथा महिलाओं को स्वालम्बी बना सकें। उन्हें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ा सके, उनका राजनीतिक विकास कर सकें।

आधुनिक युग में नव चेतना का विकास हुआ तथा सामाजिक न्याय की परिभाषा भी व्यापक हो गयी। नागरिक अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो गये तथा महिलायें भी अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो गयी। महिलायें जहां घरेलू हिंसा का शिकार हो रही थीं वो शोषण का विरोध तथा प्रत्येक क्षेत्रों में अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो गयी। सामाजिक न्याय की धारणा को नया संदर्भ और नया अर्थ मिला, जिससे सामाजिक दृष्टिकोण बदलने लगे। समानता स्वतन्त्रता बन्धुत्व

मानव गरिमावादी मूल्य ने समाज में असमानता को दूर करने का भरपूर प्रयत्न किया।

सामाजिक न्याय के विभिन्न पक्ष

1. सामाजिक न्याय अपने आप में एक व्यापक अर्थ लिये हुए है। सामाजिक न्याय नैतिकतावादी एवं मानवीय मूल्यों पर आधारित है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति को उसका मान–सम्मान दिलाने की बात कही गयी है। यह नैतिकतावादी विचारों पर आधारित है।
2. सामाजिक न्याय स्वतन्त्रता समानता और सुरक्षा के मूल्यों पर आधारित हैं, जो मनुष्य के सर्वांगीण विकास तथा समाज की उन्नति के लिए परम् आवश्यक है। राज्य का सबसे पहला लक्ष्य इन मूल्यों की स्थापना करना है।
3. सामाजिक न्याय को सभी धार्मिक ग्रन्थों में भगवान की इच्छा का प्रतीक माना जाता है तथा इसको आत्मा की पुकार माना जाता है। ताकि किसी भी व्यक्ति का किसी प्रकार अहित न हो, सामाजिक न्याय को मानव चेतना तथा जागृति का प्रतीक स्वीकार किया गया है।
4. समाजवादी समाज में सामाजिक न्याय को प्रत्येक व्यक्ति के लिए सुलभ माना गया, अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति को उसके श्रम का फल प्राप्त हो सके तथा सामाजिक एवं आर्थिक असमानता पूर्णतया समाप्त हो सके।
5. सामाजिक न्याय एक सकारात्मक कार्य है, जिसका अर्थ है समाज में कमजोर असहाय निर्धन वर्गों की सहायता करना तथा उन्हें उन्नति की दिशा प्रदान करना।

संविधान के भाग तीन में मौलिक अधिकार सामाजिक न्याय का आधार है। जो राज्य को सीमित करके व्यक्ति को स्वतन्त्रता समानता बन्धुत्व अनेक अधिकार देता है।

- नीति–निर्देशन तत्व सामाजिक न्याय पर आधारित है। जिसमें निःशुल्क न्याय, लोक सहायता, निःशुल्क शिक्षा तथा राज्य को लोक कल्याणकारी बनाने पर बल दिया गया है। नीति–निर्देशन तत्वों की प्रवृत्ति समाजवादी है। जिनकी स्थापना के प्रयास से सामाजिक न्याय की पूर्ति में स्थान मिल सके।
- भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से भी सामाजिक न्याय को सुलभ बनाया गया है। ये योजनायें विशेष रूप से कमजोर वर्गों के कल्याण एवं उत्थान के लिए हैं।
- सामाजिक न्याय की दिशा में भारतीय संविधान के अनेक अनुच्छेदों के प्रावधान स्पष्ट रूप से नियुक्ति, शिक्षण संस्थाओं से प्रवेश और लोकसभा विधान सभाओं में अनुसूचित जाति, जनजाति के लिए आरक्षण की व्यवस्था करते हैं।
- समाज में शक्तिहीन कमजोर, निर्धन, वृद्ध, असहाय बालक, महिलायें, दलित, पिछड़े, और आदिवासी समूह के लोग जो ज्ञान, चेतना, साहस के अभाव के कारण आर्थिक शारीरिक सामाजिक स्थिति के कारण अन्याय और शोषण से अपनी सुरक्षा नहीं कर पाते। सामाजिक न्याय के अंतर्गत इन्हें संरक्षण दिया जाता है।
- सामाजिक न्याय के सूचकांक में मानव विकास सूचांक लैंगिक विकास सूचांक गरीबी सूचकांक, श्रम एवं रोजगार सूचकांक, शिक्षा सूचकांक जनसंख्या सूचकांक, बाल विकास सूचांक, आर्थिक विकास सूचांक शामिल किये जा सकते हैं। जिससे सामाजिक न्याय का पैमाना ज्ञात किया जा सकता है।

सुझावः–

- यह बात स्पष्ट है कि सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए संविधान कानून विभिन्न कार्यक्रम उपर्युक्त योजना आदि की आवश्यकता है। जिससे भारतीय समाज में सामाजिक न्याय का आंकड़ा प्राप्त किया जा सके।
- भारत में सामाजिक न्याय के लिए साक्षरता, तथा महिलाओं का सशक्तिकरण होना बहुत आवश्यक है। इसके लिए रोजगार के अवसरों में वृद्धि करनी होगी, गरीबी, बिजली, पानी, सफाई, संचार, परिवहन, नागरिक सुविधायें चिकित्सा आदि की सुविधायें उपलब्ध करानी होगी।
- सामाजिक न्याय का क्षेत्र व्यापक और बहुआयामी है। इसीलिए प्राथमिकताओं का चयन करना तथा फिजूल खर्चो पर रोक लगाना आवश्यक है। भारतीय संविधान में सामाजिक समानता, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक समानता पर बल दिया गया है। जिससे भारत में सामाजिक न्याय सभी को उपलब्ध हो सके। भारत में इसके लिए विचार और आचार के बीच विसंगति को दूर करना बहुत आवश्यक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शिक्षा विद्या– श्रीराम शर्मा आचार्य।
2. रामायण की प्रगतिशील प्रेरणा– श्रीराम शर्मा आचार्य।
3. काणें पी०वी० धर्मशास्त्र का इतिहास, 700–701
4. अल्तेकर, ए०एस० प्राचीन भारत की शासन पद्धति, 101
5. जायसवाल, के०पी०, द हिन्दू पोलिटी, 17–18
6. डॉ० पुखराज जैन, भारतीय शासन एवं राजनीति।
7. कल्पना राजा राम, भारत का संविधान और भारतीय राजनीतिक व्यवस्था।
8. एस०एम० सईद, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था।
9. विपिन चन्द्र, आजादी के बाद भारत।